आनन्द श्रोत

ओं नमः शम्भवाय चमयोभवाय च नमः
शङ्कराय चमयस्कराय च नमः
शिवाय च शिवतराय च

डा. त्रिलोकी नारायण मिश्र

प्रेमोपहार,

श्री / श्रीमती / प्रिय ....

....

की सेवा में सप्रेम यह "आनन्द श्रोत" पुस्तक समर्पित है।

समर्पयिता:

डा. त्रिलोकी नारायण मिश्र

कृप्या इसका अध्ययन करें। उसके उपरान्त अन्य मित्रों को भी देवें। प्रभु भक्ति में मन लगने लगेगा तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

पुस्तक मिलने का पता

1) श्री जगदीश मित्र
232, अम्बिका विहार
पश्चिम विहार, नई दिल्ली–110087

2) श्री राम स्वरुप मंत्री
राधा कृष्णा विहार
तिलक नगर, जयपुर रोड़,
मदनगंज, किशनगढ़–305801 (राजस्थान)

3) त्रिलोकी नारायण मिश्र
बी–14, आर्य नगर सोसायटी,
91 इन्द्र प्रस्थ विस्तार, पटपडगंज
दिल्ली–110092

मुद्रण एवं छपाई ....
....

श्रीमती चन्द्रकला मिश्र

की पुण्यात्मा की पावन स्मृति में समर्पित

- **जन्म : 27.11.1935**
- **विवाह : 13.12.1951**
- **देहावसान : 26.04.2018**

ओ३म्

प्यारे प्रभुकी कृपा से जिस देवी के साथ जीवन के ६७ वर्ष व्यतीत किये, उसको श्रद्धांजली देने का मेरे मन में विचार आया। ईश्वर स्तुति की कोई पुस्तक बनवाकर वितरित करने की इच्छा बनी, उस इच्छा को मैंने प्रिय पुत्र जगदीश व उसकी पत्नि मुक्ताजी के समक्ष रखा। उन्होने मुझे प्रोत्साहित कियाकि जो मंत्र आदि में छपवाना चाहता हूँ उनको लिखूँ। मैनें कुछ प्रयास किया और महार्षि दयानन्द रचित ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका से ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना प्रकरण को थोडा सरल किया अर्थात जो संस्कृत में मंत्रो का अर्थ दिया गया था हटाकर मंत्र और हिन्दी भाषार्थ को इसमें छपवाने को दिया तथा कुछ मंत्र चारो वेदो के अर्थ सहित इसमे दिये हैं। जिन मंत्रो के स्वाध्याय ने मेरे जीवन मे प्रभु प्रेम का श्रोत बहा दिया उनमें से कुछ मंत्र सम्मिलित किये हैं।

प्रिय जगदीश एवं श्रीमती मुक्ताजी ने सतत और कठिन प्रयत्न एवं प्रयास कर मेरे मनोरथ को साकार रुप दे दिया। उनका आभार व्यक्त करने के लिये मेरे पास शब्द नही है, प्रभु की कृपा उनपर बरसती रहे।

सबसे पूर्व मैं मेरी माताजी श्रीमती चननी देवी एवं पिताजी श्री मांगी लाल जी मिश्र को नमन करता हूं।

इन्होनें बचपन से मेरे में प्रभु भक्ति का बीजारोपण किया। आर्य समाज के वार्षिक उत्सव मेरे घर के पास की स्कूल मे प्रति वर्ष होते थे। उनमें वो मुझे सदा साथ लेजाते थे। अन्य

सत्संगो मे भी मुझे लेजाते थे। ये बीज जब हम लखनऊ गये तब वहां आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सगों में हमारे जीवन में प्रस्फुटित हो गया। हम दोनो पोराणिक परिवारों से थें। प्रभु कृपासे आर्य जगत के विद्वानों, पं बुद्धदेव विद्यालकार, पं बिहारी लाल जी, स्वामी गंगागिरी सरस्वती एवं अनेक विद्वानों के आशीर्वाद से हमने बच्चों को भी साप्ताहिक सत्संगो मे लेजाकर वैदिक विचारों से उन्हे रंगने का प्रयास किया था। इसमे मेरी पत्नी को बहुत तपस्या करनी पड़ी।

यहां पर मैं पूज्य बाबूजी श्री मुकन्दी लाल जी गुप्त एवं माताजी श्रीमती शांतिदेवी का भी साधुवाद करता हूं। ये मेरे पिताजी का परम् स्नेही परिवार रहा हैं। इन्होंने हमारे जीवन में जीने की विघि की भली प्रकार शिक्षा दी। इनकी प्रेरणा से मैने लखनऊ में रहते हुये होमियोपैथिक विद्या का अनुशीलन कर डिप्लोमा, सन १६६० में प्राप्त कर, रजिस्ट्रेशन करवा कर चिकित्सा करना आरम्भ किया। उनके आशीर्वाद से ही आज भी होमियोपैथिक विधि से कठिन रोगों की चिकित्सा कर पाता हूँ। पूज्य बाबूजी के आशीर्वाद से मैंने जीवन मे निःशुल्क चिकित्सा की है। माताजी का आशीर्वाद सभी बच्चो और उनके परिवारों को मिलता रहा। आज भी इस परिवार के सभी सदस्य मुझे वरिष्ट सदस्य का सम्मान देते है। मै परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि सब पर शुभ आशीर्वाद की कृपा बनाई रखें।

मेरी पत्नी का तीनों भाइयों से अति प्यार था। बडे भाई श्री मदनलाल जी तो पिता वत स्नेह प्रदान करते

थे। बाकी दोनों भाई एवं अन्य परिवार के लोगो के साथ भी उनका बहुत प्यार था। श्रीमान बाबू लालजी एवं श्री अमरचन्दजी बहन का बहुत सम्मान करते रहे। प्रभु कृपा करें सब परिवारों के सदस्य सदा सुखी रहें और उन्नति करते रहें।

एक घटना का वर्णन करता हूं–एक रविवार को आर्य समाज हनुमान रोड के साप्ताहिक सत्संग मे एक विद्वान पं. भवानीलाल भारती–चन्दीगढ संस्कृत विद्यापीठ के अध्यक्ष ने प्रवचन मे कहा, मैं मारवाड का रहने वाला हूँ और मेरे शहर के नाम मे कोई मात्रा नहीं लगती। प्रवचन समाप्त होते ही वो पंडित जी के पास गई, नमस्ते किया और कहां पंडितजी आप परबतसर के निवासी हैं। उन्होने स्वीकार किया तो इन्होने अपने भाई का नाम लिया। पंडितजी उछल पडे तू मदन की बहन है हम दोनो ने एक साथ दसवीं कक्षा पास की थी। ये घटना मेंने इसलिये लिखी है उसके जीवन में झिझक नाम की चीज नहीं थी।

मुसीबत की घडियों में उस देवी की बुद्धिमत्ता एवं भगवान का विश्वास अनुकरणीय है एक समय ऐसा था हम दोनों कुछ चिन्तित बैठे थे, कोई साथ देने वाला नहीं था। अचानक उस देवी ने जहर का धूंट पीया और मुझे बोली क्या सोच रहे हो आओ गीत गुनगुनायें – तू है सच्चा पिता सारे संसार का, "तूही तूही है रक्षक हमारा ओ३म् प्यारा ओ३म् प्यारा"। गीत गुनगुनाने के उपरान्त बोली उठो अगली जीवन यात्रा आंरम्भ करते हैं। उस जहर से वो बीमार हो गई जीवन के अंतिम

क्षणों तक चिकित्सा कराती रही लेकिन घटना कभी जबान पर नही लाई और नही व्यवहार में कोई चर्चा की।

दूसरी बार फिर ऐसा ही समय था जो घर, सोसायटी में बुक कराया था उसकी ५०,०००रू की किश्त देनी थी। अनायास ही कन्या महाविद्यालय, वाराणसी की संचालिका बहनजी मेधा देवी का पत्र आया –"मैं बहुत समय से आपसे पत्र व्यवहार नही कर पाई क्योंकि बालिकाओं के निवास के लिए कमरे बनवाने मे व्यस्त हूँ"। परिस्थिति को देखते ही तुरंत निर्णय किया भाई साहब मदन लालजी ने जो जमीन हमारे लिये खरीदी हैं उसको बेचने की व्यवस्था करदो। फ्लेट के किश्त भी दे दो, शेष धन कन्या महाविद्यालय वाराणसी को देकर भ्राता मदन लालजी के नाम का पत्थर लगवा दो।

जीवन के सारे उतार चढाव देखने पर भी कभी अभिमान, क्रोध, लोभ, ईर्ष्याद्वेष, भय उसके जीवन में झांक भी नही पाये।

मैनें घटनाऐ इसलिये लिख दी हैं कि पुस्तक को पढने वाली बेटियां जीवन मे कभी घवरायें नही। ईश्वर का विश्वास रखें।

कई अन्य परिवारों ने मेरी पत्नि की रुग्णावस्था में उनका आत्मविश्वास बनाये रखने में, समय समय पर आकर सहायता की थी, तथा जिन देवियों ने उसकी सेवा शुश्रुषा में हाथ बंटाया, प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि उन सब पर अपनी कृपा बनाये रखें एवं उनसे उब दुःख दूरकर देवें।

मेरी पत्नी श्रीमती चन्द्रकलाजी की रुग्णावस्था में परिचर्या करने में जिन परिवारों ने मेरी सहायता की उन सबका एवं मेरे पुत्रों, श्री कमलनारायण, एवं पत्नि श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित एवं श्री सत्य नारायण एवं श्रीमती मालती, श्रीजगदीश एवं श्रीमती मुक्ता, तथा अन्यसभी परिवार के सदस्यों के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि सब में प्रभु का आनन्द श्रोत बहता रहें।

अंत मे तीनो भाइयों से पुनः निवेदन करता हूं कि आपस का प्रेम सैहादर्य बना रखना। ये उस पवित्र आत्मा के प्रति तुम्हारी सही श्रद्धांजली होगी जिसका प्रयास वो अपने जीवन में करती रही। आपस में किसी प्रकार का मतभेद नहीं पैदा होने देना, यही उस पवित्र आत्मा के प्रति तुमहारा श्राद्ध एवं तर्पण होगा।

अन्य जिन व्यक्तियों ने इस पुस्तक का अन्तिम रुप देने में सहायता दी, सुन्दर बनाने का प्रयास किया उन सब पर परमात्मा सुखों की वर्षा करे। उनको कोई दुःख कभी नही होवे।

ओ३म् शम

प्रिय सहृद जनों,

आज मानव भांति भांति की पीड़ाओं से दुःखी है। उनकी निवृति के लिए गुरूओं, उपदेशकों की शरण में जाता है। गुरूओं की मंडी में सब अपनी विधि से निराकरण बताते हैं। कोई तप करनें को कहता है, कोई जप करनें को कहता है; कोई तुला दान करनें को कहता है, कोई भजन सुमिरन करने को कहता है। नादान दुखी होकर किसी एक किनारे लगने का प्रयास करता है। लाभ नहीं होता।

ऐसे व्यक्तियों से निवेदन है, वो जानें की दुःख क्यों आता है? सभी जानते हैं कि दुखः किये हुए कर्मों के फलस्वरूप होता है। कर्मों के फल का निर्णय परमात्मा करता है। परमात्मा दयालु, न्यायकारी और सर्वान्तर्यामी है। वह सर्व शक्तिमान, अजन्मा एवं अनन्त विद्याओं का ज्ञाता है, सुख ही उसका स्वरूप है। यह निश्चित है कि वह परमात्मा पक्षपात नहीं करता। किये हुए पापों को क्षमा भी नहीं करता। प्रायः लोग कहते हैं जब वो क्षमा नहीं करता तो भजन, कीर्तन, जप आदि क्यों किये जाऐं?

मित्रों, परमात्मा न्यायकारी है और परम दयालु भी है। जब आप अपने आचरण में प्रभु के गुणों के अनुसार सुधार करके प्रार्थना करते हैं तो वो सुनता है। ज्यों ज्यों आपका आचरण सुधरेगा, उसके गुणों का मनन कर दूसरों को सुख पहुंचाने लगेंगे आपमें अपने दुःख को सहन करने की शक्ति आएगी। इस समय जो पीड़ा आपको मिली है आप उसे प्रभु का प्रसाद मानें क्योंकि वो सबको प्यार करता है, सब प्रकार के पापों से

दूर करता है, सबको सुखी करता है। ये पीड़ा उसनें आपको शुद्ध करके अपनी गोद में बैठने योग्य बनानें के लिये दी है। उसकी भक्ति, उसकी दयालुता और उसकी करूणा का लाभ आपकी समझ में आजाए, फिर आपको दुःख की पीड़ा महसूस नहीं होगी। प्रभु की गोद में जो आनन्द मिलेगा उससे बड़ा कोई आनन्द नहीं है।

अपने स्वाध्याय काल में मैने जो प्रभु का प्रसाद पाया है, वही मैं सर्वजन हितार्थ संकलन कर पुस्तक के रूप में आपके हितार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ। पुस्तक का नाम "आनन्द श्रोत" दिया है क्योंकि इसमें प्रभु के अमर ज्ञान वेदों के मंत्रों में प्रभु भक्ति भरी है। ऋग्वेद मंडल–9, सूक्त 113 व 114 के मंत्रों के अंत में एक सूक्ति है "इन्द्राग्येन्द्रो परिश्रवः" (इन्द्रो इन्द्राय परिस्रवः) हे रसीले परमात्मन तू आत्मा के लिए परिश्रवण कर बहता हुआ सा आ, अर्थात् प्राप्त हो। अतः इन मंत्रों में प्रभु से प्रार्थना की गई है की प्रभु का आनन्द स्रोत मेरी आत्मा में प्राप्त होवे। इन मंत्रों मे अपने जीवन को प्रभु का आनन्द पाने योग्य बनानें की शिक्षा है, बस उसे ही समझ लेंवे तो प्रभु भक्ति के आनन्द से विभोर हो जाओगे।

इस पुस्तक में महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, में जो प्रभु की स्तुति, प्रार्थना, उपासना का प्रकरण लिखा है उसको प्रस्तुत किया है। वह प्रभु भक्ति के लिए अमूल्य निधि है। इसके अलावा सामवेद तो उपासना का ही वेद है। चारो बेदों के कुछ मंत्र स्वामी ब्रह्ममुनि जी द्वारा रचित किये गए "पुस्तक वैदिक वंदन" से संग्रह कर प्रस्तुत

किये हैं। आशा है प्रस्तुत पुस्तक से घर पर परिवार सहित कुछ पृष्ठों और मंत्रों का नित्य प्रतिदिन मनन कर अवष्य आनन्द स्रोत में डुबकी लगाकर अमृत पान करेंगे और अन्य मित्रों को भी अमृत पीने की प्रेरणा देंगे।

ओ३म् स्वस्ति

संकलन कर्ता

होम्योपेथ – डा. त्रिलोकी नारायण

स्वस्थ शरीर

प्रभु भजन करनें के लिये शरीर स्वस्थ व शक्ति संपन्न होना आवश्यक है। जिसके शरीर में शक्ति नहीं है वो भजन करने में असमर्थ रहेगा। यदि शरीर में रोग हैं तो भी प्रभु भक्ति नहीं हो सकती। मन में शांति तथा बुद्धि में विवेक भी भक्ति के आवश्यक अंग हैं। इस सब के लिये कुछ आवश्यक उपाय लिख देता हूँ। उनका पालन करेंगे तो शरीर, मन और बुद्धि निरोग, शान्त तथा स्थिर रह सकेंगे। इन सबके सहयोग से ही भक्ति करना संभव होता हैं।

स्वस्थ रहनें के उपायः

1. प्रातः नित्य नियम से बिस्तर छोड़ देवें।
2. दैनिक शौच, स्नान आदि नियमित रूप से करें।
3. नित्य निरंतर, 15 मिनट का व्यायाम अवश्य करें। व्यायाम किसी चिकित्सक की सलाह से जो आपके स्वास्थ्य के अनुकूल हो वो ही करें।
4. दैनिक पेट साफ होना आवश्यक है। इसके लिये कुशल चिकित्सक से परामर्श कर औषधि का सेवन करें, जिससे मल–मूत्र विसर्जन आराम से हो जाए। जोर लगाना, कांखना हानिकारक होता है। दैनिक जुलाब की गोली लेना और इसबगोल लेना भी हानिकारक होता है। तेज जुलाब की गोली से आंतों में विकार हो जाते हैं।

5. प्राणायाम – दैनिक कम से कम पांच और अधिक से अधिक दस प्राणायाम करें। प्राणायाम कई प्रकार के हैं; लेकिन शरीर शोधन के लिये प्राणायाम विधि है :–

सांस को शनैः शनैः बाहर निकाल देवें। फिर बाहर ही रोके कुछ समय के लिये, फिर धीरे धीरे श्वास को भीतर भर लेवें। कुछ समय रोक कर धीरे धीरे बाहर निकाल देवे। यह एक प्राणायाम कहलाता है। याद रखें – श्वास को भीतर और बाहर रोकनें के लिये नाक को हाथ से दबा कर बंद नहीं करें।

6. संभव हो और समय हो तो आधा धण्टा तेज गति से भ्रमण करें।

7. प्रभु कृपा करेंगे शरीर निरोग, स्वस्थ मन तथा बुद्धि शुद्ध रहेगी।

"स्तुति मंत्र"

इस प्रभु भक्ति के मंत्रों का संकलन करनें का मेरा अभिप्राय है कि जो वेदों और वैदिक ग्रन्थों में भक्ति का मार्ग दर्शाया है, उसको सभी लोग यथावत जान लेवें इसलिये यह प्रयत्न किया है। सो परमेश्वर के सहायता से यह काम अच्छे प्रकार से सिद्ध हों, यही सर्वशक्तिमान परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद भद्रं तन्न आ सुव।।
(य. अध्याय 30 मंत्र 3)

हे सत्य स्वरूप! हे विज्ञानमय! हे सदानन्द स्वरूप! हे अनन्त सामर्थ्ययुक्त! हे परम कृपालो! हे अनन्त विद्यामय! हे विज्ञान विद्याप्रद! (देव) हे परमेश्वर! आप सूर्यादि सब जगत का और विद्या का प्रकाश करने वाले हैं तथा सब आनन्दों के देने वाले हैं। (सवितः) हे सर्व जगदुत्पादक सर्व शक्तिमान्! आप सब जगत को उत्पन्न करनें वाले हैं। (नः) हमारे (विश्वानि) सब जो (दुरितानि) दुःख हैं उनको और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप (परासुव) दूर कर दीजिए। अर्थात् हमसे उनको और उनको हमसे सदा दूर रखिए, (यद्भद्र) और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है, जो कि सब सुखों से युक्त भोग हैं, उनको हमारे लिए सब दिनों में प्राप्त कराइए। सो सुख दो प्रकार का है – एक जो सत्य विद्या की प्राप्ति से

अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्ति राज्य ईष्ट, मित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से उत्तम सुख का होना, और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है, कि जिसको मोक्ष कहते हैं और जिसमें ये दोनों सुख आते हैं उसी को भद्र कहते हैं। (तन्न आ सुव) उस सुख को हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त कराइये।।

अब आगे स्तुति मंत्र और अर्थ लिखा है। इन मंत्रों से प्रार्थना करनें से भक्ति में मन लगनें लगता है।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधि तिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।1।।

(योभूतं) जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत हो गया है (च) चकार से दूसरा जो वर्तमान है, (भव्यं च) और तीसरा भविष्यत् जो होने वाला है, इन तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता है, उन सब व्यवहारों को वह यथावत जानता है, (सर्वंश्यचाधिष्ठति) जो सब जगत को अपनें विज्ञान से ही जानता, रचता, पालन कर्ता और संसार के सब पदार्थों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है (सबका अधिष्ठाता होकर) सब कालों के ऊपर विराजमान है। (स्वर्यस्य च केवलं) जिसका सुख ही केवल स्वरूप है, जोकि मोक्ष और व्यवहार सुख का भी देने वाला है, जिसको लेशमात्र भी दुःख नहीं होता जो आनन्दघन परमेश्वर है (तस्मै ज्येष्ठाय ब्राह्मणे नमः) ज्येष्ठ अर्थात् सबसे बड़ा सब सामर्थ्य से युक्त ब्रह्म जो परमात्मा है उसको हमारा नमस्कार प्राप्त हो। ।। 1 ।।

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्ष मुतोदरम्।

दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।2।।

(यस्य भूमिः प्रमा) जिस परमेश्वर के होने और ज्ञान मे भूमि जो पृथ्वी आदि पदार्थ हैं सो प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान की सिद्धि होने का दृष्टान्त है, तथा जिसने अपनी सृष्टि में पृथ्वी को पादस्थानी रचा है (अन्तरिक्षमुतोदरम्) अन्तरिक्ष जो पृथ्वी और सूर्य के बीच मे आकाश है सो जिसने उदरस्थानी किया है, (दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं) और जिसने अपनी सृष्टि में दिव अर्थात प्रकाश करने वाले पदार्थों को सबके ऊपर मस्तक स्थानी किया है, अर्थात् जो पृथ्वी से लेके सूर्यलोक पर्यन्त सब जगत को रचके उसमें व्यापक हो के जगत के सब अवयवों से पूर्ण होकर सबको धारण कर रहा है (तस्मै) उस परब्रह्म को हमारा अत्यन्त नमस्कार है। ।।2।।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः

अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।3।।

(यस्य सूर्यश्चक्षु श्चन्द्रमाश्च पुनर्णव) और जिसने नेत्रस्थानी सूर्य और चन्द्रमा को किया है, जो कल्प कल्प के आदि में सूर्य और चन्द्रमादि पदार्थों को बारंबार नये नये रचता है, (अग्निं यश्चक्र आस्यं) और जिसनें मुखस्थानी अग्नि को उत्पन्न किया है (तस्मै) उसी ब्रह्म को हम लोगों का नमस्कार हो।।3।।

यस्य वातः प्राणपानौं चक्षुरडि.गरसोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।4।।

(यस्य वातः प्राणपानौं) जिसने ब्रहाण्ड के वायु को प्राण और अपान की तरह किया है, (चक्षुरग्डिंरसोभवन) तथा जो प्रकाश करनें वाली किरणें है वे चक्षु की नाई जिसने की है, अर्थात उनसे ही रूप ग्रहण होता है, (दिषो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै) और जिसनें दस दिशाओं को सब व्यवहारों को सिद्ध करनें वाली बनाई हैं, ऐसा जो अनंत विद्यायुक्त परमात्मा सब मनुष्यों का ईष्ट देव है, उस ब्रह्म को निरन्तर हमारा नमस्कार हो। ।।4।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।5।।

(य आत्मदां:0) जो जगदीश्वर अपनी कृपा से अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला है, जो सब विद्या और सत्य सुखों की प्राप्ति कराने वाला है, जिसकी उपासना सब विद्वान लोग करते आए हैं, और जिसका अनुशासन जो वेदोक्त शिक्षा है उसको अत्यन्त मान्य से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं, जिसका आश्रय करना ही मोक्ष सुख का कारण है और जिसकी अकृपा ही जन्म मरण रूप दुःखों को देने वाली है, अर्थात् ईश्वर और उसका उपदेश जो सत्य विद्या सत्य धर्म और सत्य मोक्ष हैं उनको नहीं मानना, और जो वेद से विरूद्ध होके अपनी

कपोलकल्पना अर्थात् दुष्ट इच्छा से बुरे कामों में वर्तता है, उस पर ईश्वर की अकृपा होती है, वही सब दुःखों का कारण है, और जिसकी आज्ञापालन ही सब सुखों का मूल है, (कस्मै0) जो सुखस्वरूप और सब प्रजा का पति है उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिये सत्य प्रेम भक्तिरूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें, जिससे हम लोगों को किसी प्रकांर का दुःख कभी न हो।।5।।

द्यौः शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।6।।

(द्यौः शान्तिः0) हे सर्वशक्तिमन् भगवान्! आपकी भक्ति और कृपा से ही 'द्यौः' जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है यह सब दिन हमको सुखदायक हो, तथा जो आकाश, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति, वट आदि वृक्ष, जो संसार के सब विद्वान, ब्रह्म जो वेद, ये सब पदार्थ और इनसे भिन्न भी जो जगत् है वे सब सुख देने वाले हमको सब काल में हों कि सब पदार्थ सब दिन हमारे अनुकूल रहें,। हे भगवान्! इस सब शान्ति से, हमको विद्या, बुद्धि, विज्ञान, आरोग्य और सब उत्तम सहाय को अपनी कृपा से दीजिये तथा हम लोगों और सब जगत् को उत्तम गुण और सुख के दान से

बढ़ाइये।।6।।

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरू।
शन्नः कुरू प्रजाम्योभयं नः पशुभ्यः।।7।।

(यतो य0) हे परमेश्वर! आप जिस जिस देश से जगत् के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस उस देश से (हमको) भय से रहित करिये, अर्थात् किसी देश से हम को किण्चित भी भय न हो, (शन्नः कुरू) वैसे ही सब दिशाओं में जो आपकी प्रजा और पशु हैं उनसे भी हमको भय रहित करें, तथा हमसे उनको सुख हो, और उनको भी हमसे भय न हो, तथा आपकी प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं, उन सबसे जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थ हैं उनको आपके अनुग्रह से हम लोग शीघ्र प्राप्त हों, जिससे मनुष्य जन्म के धर्मादि जो फल हैं, वे सुख से सिद्ध हों।।7।।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिश्चित्तम सर्वभोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु।।8।।

(यस्मिन्नृचः) हे भगवन् कृपानिधे! (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद और इन तीनों के अन्तर्गत होने से अथर्ववेद भी, ये सब जिसमें स्थित होते हैं तथा जिसमें मोक्ष विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या स्थित है, जैसे रथ के पहिये के नाभिरूप बीच के भाग में आरे स्थित होते है अर्थात् जुड़े होते हैं। (यस्मिँश्च0) जिसमें सब प्रजा का चित्त जो स्मरण करने

की वृत्ति है सो सब गंठी हुई है, जैसे माला के मनके सूत्र में गंठे हुए होते हैं, ऐसा जो मेरा मन है सो आपकी कृपा से शुद्ध हो, तथा कल्याण जो मोक्ष और सत्यधर्म का अनुष्ठान तथा असत्य के परित्याग करने का संकल्प जो इच्छा है, इससे युक्त सदा हो। जिस मन से हम लोगों को आपके किये वेदों के सत्य अर्थ का यथावत् प्रकाश हो। हे सर्वविद्यामय सर्वार्थवित् जगदीश्वर ! हम पर आप कृपा धारण करें, जिससे हम लोग विघ्नों से सदा अलग रहें, और सत्य अर्थ सहित इस वेद्भाष्य से आपके बनाए वेदों के सत्य अर्थ की विस्ताररूप जो कीर्ति है उसको जगत् मे सदा के लिए बढ़ावे और इस भाष्य को देख के वेदों के अनुसार सत्य का अनुष्ठान करके हम सब लोग श्रेष्ठ गुणो से युक्त सदा हों। इसलिये हम लोग आपकी प्रार्थना प्रेम से सदा करते हैं। इसको आप कृपा से शीघ्र सुनें। जिससे यह जो सबका उपकार करने वाला वेदभाष्य है इसका यथावत् सबको लाभ प्राप्त हो। ।8।।

प्रार्थना एवं समर्पण मंत्र

तेजोऽसि तेजो मयि घेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि घेहि
बलंभसि बंलमयिघेहि ।
ओजोऽयोजोमयि घेहि मन्युरसि मन्युं मयि घेहि
सहोऽसि सहो मयि धेहि ।।9।।

(तेजोऽसि0) हे परमेश्वर ! आप प्रकाशरूप है मेरे हृदय में भी कृपासे विज्ञान रूप प्रकाश कीजिये। (वीर्यमसि) हे जगदीश्वर ! आप अनन्त पराक्रम वाले हो, मुझको भी पूर्ण पराक्रम दीजिये। (बलंमसि0) हे अनन्त बलवाले महेश्वर ! आप अपने अनुग्रह से मुझको भी शरीर और आत्मा में पूर्ण बल दीजिये। (ओजो.) हे सर्वशक्तिमान ! आप सब सामर्थ्य के निवासस्थान हैं, अपनी करुणा से यथोचित सामर्थ्य का निवासस्थान मुझको भी कीजिए। (मन्युरसि0) हे दुष्टों पर क्रोध करने हारे ! आप दृष्ठ कामों और दुष्ठ जीवो पर क्रोध करने का स्वभाव मुझ मे भी रखिये (सहोऽसि0) हे सबके सहन करनेहारे ईश्वर ! आप जैसे पृथ्वी आदि लोकों के धारण और नास्तिकों के दुष्टव्यवहारो को सहते है, वैसे ही सुख, दुःख, हानि, लाभ, सरदी, गरमी, भूख, प्यास, और युद्ध आदि का सहने वाला मुझको भी कीजिए। अर्थात् सब शुभ गुण मुझको भी देके अशुभ गुणो से सदा अलग रखिये।।

हे उत्तम ऐश्वर्ययुक्त परमेष्वर ! आप आपनी कृपा से श्रोत्र आदि उत्तम इन्द्रिय और श्रेष्ठ स्वभाववाले मन को मुझमें

स्थिर कीजिये और हमे पुष्ट कीजिये अर्थात् हमको उत्तम गुण और पदार्थों को सब दिन के लिये दीजिये और पालन कीजिये। हे परम धन वाले ईश्वर ! आप उत्तम राज्य आदि धन हमारे लिए धारण कीजिए। और उसमें हमे संयुक्त कीजिए। मनुष्यों के लिए ये ईश्वर की आज्ञा है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग सब काल मे सब प्रकार से उत्तम गुणो का ग्रहण और उत्तम ही कर्मो का सेवन सदा करते रहो। हे भगवान् ! आपकी कृपा से हम लोगो की सब इच्छाए सर्वदा सत्य ही होती रहे, तथा सदा सत्य ही कर्म करने की इच्छा हो, किन्तु चक्रवर्ती राज्य के अनुशासन आदि की इच्छाये कभी असफल न हों।

या मेघां देवगणाः पितरश्चोपासते !
तया मामद्य मेघयाग्ने मेघाविनं कुरू स्वाहा ।।

(यां मेघा0) इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि – हे परमात्मन् ! आप अपनी कृपा से, जो अत्यन्त उत्तम सत्यविद्यादि् शुभगुणों को धारण करने के योग्य बुद्धि है, उससे युक्त हम लोगों को कीजिये। (कौन सी मेधा) कि जिसके प्रताप से देव अर्थात् विद्वान् और पितर अर्थात् ज्ञानी (जन जिसकी उपासना करते है। उसी मेधा से मुझे आज युक्त कीजिये जिससे युक्त होके हम लोग आपकी उपासना सब दिन करते रहे। (स्वाहॉ) इस शब्द का अर्थ निरुक्तकार यास्कमुनिजी ने अनेक प्रकार से कहा है, सो लिखते है कि ....

(सु आहेति वा) सब मनुष्यों को अच्छा, मीठा, कल्याण करने वाला और प्रिय वचन सदा बोलना चाहिये। (स्वा हागाहेति वा) अर्थात् मनुष्यो को यह निष्चय करके जानना चाहिये, कि जैसी बात उनके ज्ञान के बीच में वर्त्तमान हो, जीभ से भी सदा वैसा ही बोलें, उससे विपरीत नहीं। (स्वं प्राहेति वा) सब मनुष्य अपने ही पदार्थ को अपना कहें, दूसरे के पदार्थ को कभी नहीं। अर्थात जिनका जितना धर्म युक्त पुरुषार्थ से उनको पदार्थ प्राप्त हो, उतने ही में सदा सन्तोष करें। (स्वाहुतं हॉ) अर्थात् सर्व दिन अच्छी प्रकार सुगन्धादि द्रव्यों का संस्कार करके सब जगत् के उपकार करने वाले होम को किया करें। और 'स्वाहा' शब्द का यह भी अर्थ है कि

सब दिन मिथ्यावाद को छोड़ के सत्य ही बोलना चाहिये ।

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ।।2।।

(स्थिरा वः0) इस मन्त्र में ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि – हे मनुष्यों ! तुम लोग सब काल में उत्तम बल वाले हो । किन्तु तुम्हारे (आयुधा) अर्थात आग्नेयादि अस्त्र और शतघ्नी = तोप, भशुन्डी = बन्दूक, धनुषबाण और तलवार आदि शस्त्र सब स्थिर हो। तथा (पराणुदे) मेरी कृपा से तुम्हारे अस्त्र और शस्त्र सब दुष्ट शत्रुओं के पराजय करने के योग्य होवें। (वीडू) तथा वे अत्यन्त घ्ढ़ और प्रशंसा करने के योग्य होवें । (उत प्रतिष्कभ0) अर्थात् तुम्हारे अस्त्र और शस्त्र सब दुष्ट शत्रुओं की सेना के वेग थांमने के लिये प्रबल हों । तथा (युष्माकमस्तु तू0) हे मनुष्यो ! तुम्हारी (तविषी0) सेना अत्यन्त प्रशंसा के योग्य हो। जिससे तुम्हारा अखंएिडत बल और चक्रवर्त्ति राज्य स्थिर होकर दुष्ट शत्रुओ को सदा पराजय करता रहे। (मा मर्त्यस्य0) परन्तु यह मेरा आशीर्वाद केवल धर्मात्मा, न्यायकारी और श्रेष्ठ मनुष्यों के लिये है, और जो (मायि0) कपटी, छली, अन्यायकारी और दुष्ट मनुष्य हैं उनके लिये नही है। किन्तु ऐसे मनुष्यो का तो सदा पराजय ही होता रहेगा। इसलिये तुम लोग सदा धर्म कार्यो ही को करते रहो ।।2।।

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ।

धर्मासि सुधर्मा मेन्यस्मे नृम्णानिं धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ।।3।।

(इषे पिन्वस्व0) हे भगवन् ! (इषे0) हमारी शुभ कर्म करने ही की इच्छा हो, और हमारे शरीरों को उत्तम अन्न से सदा पुष्टियुक्त रखिये । (ऊर्जे0) अर्थात् अपनी कृपा से हमको सदा उत्तम पराक्रमयुक्त और दृढ़ प्रयत्न वाले कीजिये। (ब्रह्मणो0) सत्यशास्त्र अर्थात् वेदविद्या के पढ़ने पढ़ाने और उससे यथावत् उपकार लेने में हमको अत्यंत समर्थ कीजिये । अर्थात जिससे हम लोग उत्तम विद्यादि गुणों और कर्मो को करके ब्राह्मणवर्ण हों। (क्षत्राय) हे परमेश्वर ! आपके अनुग्रह से हम लोग चक्रवर्त्तिराज्य और शूरवीर पुरुषों की सेना से युक्त हों, कि क्षत्रियवर्ण के अधिकारी हमको कीजिये। (द्यावापृ0) जैसे पृथिवी, सूर्य, अग्नि, जल और वायु आदि पदार्थो से सब जगत् का प्रकाश और उपकार होता है, वैसे ही कला कौशल, विमान आदि यान चलाने के लिये हमको उत्तम सुखसहित कीजिये, कि जिससे हम लोग सब सृष्टि के उपकार करने वाले हों, (धर्मासि0) हे सुधर्मन् न्याय करने हारे ईश्वर ! आप न्यायकारी हैं, वैसे हमको भी न्यायकारी कीजिये। (अमे0) हे भगवन् ! जैसे आप निर्वैर होके सबसे वर्तते हो, वैसे ही सबसे वैर रहित हमको भी कीजिये। (अस्मे) हे परमकारुणिक ! हमारे लिये (नृम्णानि0) उत्तम घन और शुभगुण दीजिये। (ब्रह्म0) हे परमेश्वर ! आप ब्राह्मणों को हमारे बीच में उत्तमविद्या युक्त कीजिये। (क्षत्र0) हमको

अत्यंत चतुर, शूरवीर और क्षत्रियवर्ण का अधिकारी कीजिये। (विष0) अर्थात वैश्यवर्ण और हमारी प्रजा का रक्षण सदा कीजिये, कि जिससे हम शुभ गुण वाले होकर अत्यन्त पुरुषार्थी हों। ।3।।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
शिवसंकल्पमस्तु ।।4।।

(यज्जाग्रतो0) हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! जैसे जाग्रत अवस्था में मेरा मन दूर दूर घूमने वाला, सब इन्द्रियों का स्वामी, तथा (दैवं0) ज्ञान आदि दिव्यगुण वाला और प्रकाश स्वरूप है, वैसे ही (तदु सु0) निद्रा अवस्था में भी शुद्ध और आनन्दयुक्त रहे। (ज्योतिषां0) जो प्रकाश का भी प्रकाश करने वाला एक है, (तन्मे0) हे परमेश्र्वर ! ऐसा जो मेरा मन है, सो आपकी कृपा से (शिवसं0) कल्याण करने वाला और शुद्धस्वभावयुक्त हो, जिससे अधर्म कामों में कमी प्रवृत्त न हो ।।4।।

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे
धीतिश्च मे क्रतुश्च मे ।।5।।

इसी प्रकार से (वाजश्च मे0) इत्यादि शुक्ल यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में (वर्तमान) मन्त्र ईश्वर के अर्थ सर्वस्व

समर्पण करने के ही विधान में हैं। अर्थात् सबसे उत्तम मोक्षसुख से लेके अन्न जल पर्यन्त सब पदार्थो की याचना मनुष्यों को केवल ईश्वर ही से करनी चाहिये।।5।।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञने कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्व यजुश्चऽऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा ऽअगन्मामृताऽअभूम प्रजापतेः प्रजाऽअभू म वेट् स्वाहा ।।6।।

(आयुर्यज्ञेनॉ) यज्ञ नाम विष्णु का है, जो कि सब जगत् में व्यापक हो रहा है। उसी परमेश्वर के अर्थ सब चीज समर्पण कर देना चाहिये। इस विषय मे यह मन्त्र है कि सब मनुष्य अपनी आयु को ईश्वर की सेवा और उसकी आज्ञापालन में समर्पित करें । (प्राणो0) अर्थात् अपना प्राण भी ईश्वर के अर्थ कर देवें। (चक्षु0) जो प्रत्यक्ष प्रमाण और आंख, (श्रोत्रं0) जो श्रवण विद्या और शब्द प्रमाणदि, (वाक्0) वाणी, (मनो0) मन और विज्ञान, (आत्मा) जीव, (ब्रह्मा0) तथा चारों वेद को पढ़के जो पुरुषार्थ किया है, (ज्योतिः0) जो प्रकाश, (स्वर्य0). जो सब सुख, (पृष्ठं0) जो उत्तम कर्मो का फल और स्थान, (यज्ञो0) जो कि पूर्वोक्त तीन प्रकार का यज्ञ किया जाता है, ये सब ईश्वर की प्रसन्नता के अर्थ समर्पित कर देना अवश्य है।

(स्तोमश्च0) जो स्तुति का समूह, (यजुश्च0) सब क्रियाओं की विद्या, (ऋृक् च0) ऋग्वेद अर्थात् स्तुति स्तोत्र, (साम च0) सब गान करने की विद्या, चकार से अथर्ववेद, (बृहच्च) बड़े बड़े सब पदार्थ, और (रथन्तरं च) शिल्पविद्या आदि के फलो में से जो जो फल अपने आधीन हों वे सब परमेश्वर के समर्पण कर देवें। क्योंकि सब वस्तु ईश्वर ही की बनाई हुई हैं।

इस प्रकार से जो मनुषय अपनी सब चीजें परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है, उसके लिये परमकारुणिक परमात्मा सब सुख देता है इसमे संदेह नहीं। (स्वर्देवा0) अर्थात् परमात्मा की कृपा की लहर और परमप्रकाशरूप विज्ञानप्राप्ति में शुद्ध होके, तथा सब संसार के बीच में कीर्त्तिमान् होके, हम लोग परमानन्दस्वरूप मोक्ष सुख को (अगन्म) सब दिन के लिये प्राप्त हों। (प्रजापतेः0) तथा हम सब मनुष्य लोगों को उचित है कि किसी एक मनुष्य को अपना राजा न मानें। हम लोग एक परमेश्वर को अपना राजा मान के सत्य न्याय को प्राप्त हों सब मनुष्यो को परमेश्वर से इस प्रकार की आशा करनी उचित है कि हे कृपानिधे! आपकी आज्ञा और भक्ति से हम लोग परस्पर विरोधी कभी न हों, किन्तु आप और सब के साथ सदा पिता पुत्र के समान प्रेम से वर्तें।

उपासना

ईश्वर की उपासना विषय जैसा वेदो मे लिखा है उसमे से कुछ संक्षेप से यहां भी लिखा जाता है – जीवको परमेश्वर की उपासना नित्य करनी उचित है अर्थात् उपासना समय में सब मनुष्य अपने मन को स्थिर करें। जो लोग ईश्वर के उपासक बड़े बड़े बुद्धिमान उपासना योग के ग्रहण करनेवाले है, वे सबको जानने वाला सबसे बड़ा और सब विद्याओं से युक्त जो परमेश्वर है, उसके बीच मे अपने मन को ठीक ठीक युक्त करते है। अपनी बुद्धि अर्थात ज्ञान को भी सदा परमेश्वर ही में स्थिर करते है। जो परमेश्वर इस सब जगत को धारण और विधान करता है, जो सब जीवों के ज्ञानों तथा प्रजा का भी साक्षी है। वही एक परमात्मा सर्वव्यापक है, जिससे परे कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। उस देव जो सब जगत के प्रकाश और सब की रचना करने वाले परमेश्वर की हम लोग सब प्रकार से स्तुति करें। कैसी वह स्तुति है कि सबसे बड़ी, अर्थात् जिसके समान किसी दूसरे की हो ही नही सकती ऐसा करने से जीव परमेश्वर के सामीप्य को प्राप्त करते है।

योग को करने वाले मनुष्य तत्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिये जब अपने मन को पहले परमेश्वर से युक्त करते है, तब परमेश्वर उनकी बुद्धि को आपनी कृपा से युक्त कर लेता हैं। फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके यथावत धारण करते हैं। पृथ्वी के बीच में योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है। उपासना का उपदेश देने वाले और ग्रहण करने वाले दोनो के प्रति परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है, कि जब तुम सनातन ब्रह्म की

सत्यप्रेम भाव से अपने आत्मा को स्थिर करके नमस्कार रीति से उपासना करोगे, तब मैं तुमको आशीर्वाद देऊंगा कि सत्य कीर्ति तुम दोनो को प्राप्त हो। हे मोक्ष मार्ग के पालन करने वाले मनुष्यो ! तुम सब लोग सुनो कि जो मोक्ष सुखो को पूर्व प्राप्त कर चुकें है उसी उपासना योग से तुम लोग भी उन सुखो को प्राप्त होवो, इसमें संदेह मत करो।

हे उपासक लोगो ! तुम योगाम्यास तथा परमात्मा के योग से, नाड़ियों मे ध्यान करके परमानन्द का विस्तार करो। इस प्रकार करने से अपने अन्तः करण को शुद्ध और परमानन्दस्वरूप परमेश्वर मे स्थिर करके, उसमें उपासना विधान से विज्ञानरूप बीज को अच्छी प्रकार से बोओ । पूर्वोक प्रकार से वेदवाणी पढ़के परमात्मा में युक्त होकर उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना मे प्रवृत्ति करो। तथा तुम लोग ऐसी इच्छा करो कि हम उपासना योग के फल को प्राप्त होवें। और हमको ईश्वर के अनुग्रह से वह फल शीघ्र ही प्राप्त हो। कैसा वह फल है? कि जो परिपक्व शुद्ध परम आनन्द से भरा हुआ, मोक्षसुख को प्राप्त करने वाला है। अर्थात् वह उपासनायोगवृत्ति कैसी है? कि सब क्लेशों को नाश करने वाली, और सब शान्ति आदि गुणों से पूर्ण है। उन उपासनायोगवृत्तियो से परमात्मा के योग को अपने आत्मा में प्रक्रासित करो।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च

नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ।।1।।

(अष्टाविंशनि शिवानि॑) हे परमैश्वरर्ययुक्त मंगलमय परमेश्वर ! आपकी कृपा से मुझको उपासनायोग प्राप्त हो, तथा उससे मुझको सुख भी मिले। इसी प्रकार आपकी कृपा से दश इन्द्रिय दस प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल ये अट्‌ठाईस सब कल्याणो में प्रवृत्त होके उपासनायोग को सदा सेवन करे। तथा हम भी (योगं0) उस योग के द्वारा (क्षेमं) रक्षा को, और रक्षा से योग को प्राप्त हुआ चाहते है। इसलिये हम लोग रात दिन आपको नमस्कार करते है।।1।।

भूयानरात्याः शचयाः पतिरुत्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ।।2।।

(भूयानरात्याः0) हे जेगदीश्वर ! आप (शच्याः) सब प्रजा, वाणी और कर्म इन तीनों के पति है। तथा (भूयान्) सर्वशक्तिमान् आदि विशेषणों से युक्त है। जिसे आप (अरात्याः) अर्थात दुष्टप्रजा, मिथ्यारूपवाणी और पापकर्मों को, विनाश करने में अत्यन्त समर्थ है। तथा आपको (विभूः) सब में व्यापक और (प्रभूः) सब सामर्थ्यवाले जान के हम लोग आपकी उपासना करते है।।2।।

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।।3।।

(नमस्ते अस्तु0) परमेश्वर सब मनुष्यों को उपदेश करता है

कि – हे उपासक लोगो ! तुम मुझको प्रेमभाव से अपने आत्मा में सदा देखते रहो। तथा मेरी आज्ञा और वेदविद्या को यथावत् जान के उसी रीति से आचरण करो। फिर मनुष्य भी ईश्वर से प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर ! आप कृपादृष्टि से (पश्य मा) हमको सदा देखिये। इसलिये हम लोग आपको सदा नमस्कार करते है ।।3।।

अत्राद्येन यशसा तेजसा ब्रह्मणवर्चसेन ।।4।।

(अत्राद्येन) अत्र आादि ऐश्वर्य, (यशसा) सबसे उत्तम कीर्ति, (तेजसा) भय से रहित, (ब्रह्मएावर्चसेन) और सम्पूर्ण विद्या से युक्त हम लोगों को करके कृपा से देखिये। इसलिये हम लोग सदा आपकी उपासना करते हैं।।4।।

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम्।।5।।

(अम्भः) हे भगवान् ! आप सबमें व्यापक, शान्तस्वरुप और प्राएा के भी प्राएा हैं। (अमः) ज्ञानस्वरुप और ज्ञान को देनेवाले हैं। (महः) सब के पूज्य, सबसे बड़े, और (सहः) सबके सहन करनेवाले हैं। (इति) इस प्रकार का (त्वा) आपको जान के (वयम्0) हम लोग सदा उपासना करते हैं।।5।।

अम्भो अरुण रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम्।।6।।

(अन्भः) दूसरी बार इस शब्द का पाठ केवल आदर के

लिये है। (अरुएम) आप प्रकाशस्वरुप, सब दुःखो के नाश करनेवाले, तथा (रजतम्) प्रीति के चरम हेतु, आनन्दस्वरुप (रजः) सब लोको के ऐष्वर्य से युक्त, (सहः) (इस शब्द का भी (पुनः) पाठ आदरार्थ है) और सहनशक्ति वाले हैं। इसलिए हम लोग आपकी उपासना निरन्तर करते हैं।।6।।

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम्।।7।।

(उरु) आप सब बलवाले, (पृथु) (अति विस्तृत = व्यापक) अर्थात आदि अन्त रहित, तथा (सुभूः) सब पदार्थो में अच्छी प्रकार से वर्तमान, और (भूवः) अवकाशस्वरुप से सबके निवासस्थान है। इस कारण हम लोग उपासना करके आपके ही आश्रित रहते है।।7।।

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम्।।8।।

(प्रथो बरो) हे परमात्मन्। आप सब जगत में प्रसिद्ध और उत्तम है (व्यचः) अर्थात सब प्रकार से इस जगत का धारण, पालण और वियोग करने वाले तथा (वरलोकः) सब विद्वानो के देखने अर्थात जानने के योग्य केवल आप ही है, दूसरा कोई नही।

मुक्ति का उत्तम साधन उपासना है, इसीलिसे जो विद्वान लोग है, वे सब जगत और सब मनुष्यों के हृदयों में व्याप्त ईश्वर को, उपासना–रीति से अपने आत्मा के साथ युक्त करते

है। वह ईश्वर सब का जाननेवाला, हिंसादि दोषरहित, कृपा का समुद्र, सब आनन्दों का बढाने वाला, सब रीति से बडा है। इसी से उपासको के आत्मा, सब अविद्यादि दोषों के अन्धकार से छूट के आत्माओं को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर में प्रकाशमय होकर प्रकाशित रहते है। ।8। ।

अब जिस रीती से उपासना करनी चाहिए, सो आगे लिखते है –

जब जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहे, तब तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर, अपने मन को शुद्ध, और आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्द्रिय और मन को सचिदानन्दादि लक्षएवाले अन्तरयामी अर्थात सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर, सम्यक् चिन्तन करके, अपने आत्मा को भलीभांत से उस में लगा दें। इसकी रीति पतन्जली मुनि के किये योगशास्त्र और उन्ही सूत्रों के वेदव्यास मुनिजी के किये भाष्य के प्रमाणों से लिखते हैं–

योगश्चित्त वृति निरोधः।।

(योगश्चित) चित्त की वृत्तियो को सब बुराइयो से हटा के, शुभ गुणो में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं। और वियोग उसको कहते है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्धध बुराइयो में फंस के उससे दूर हो जाना।।

(प्रश्न) जब वृत्ति बाहर के व्यवहारो से हटा के स्थिर की जाती है, तब कहां पर स्थिर होती है?

इसका उत्तर यह है कि – (तदा द्र) जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ बांध के रोक देते है, तब वह जिस ओर नीचा होता है, उस ओर को बह के वही स्थिर हो जाता है, इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है, तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है।।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापि सर्वभूतान्तरात्मा।
सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणाश्व।।

सो उपासना दो प्रकार की है–एक सगुणा और दूसरी निर्गुणा। उनमें से 'स पर्य्यगा0''इस मन्त्र के अर्थानुसार शुक्र अर्थात् जगत् का रचनेवाला, वीर्यवान् तथा शुद्ध, कवि, मनीषी, परिभू और स्वयंभू इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण है, और अकाय, अव्रण, अस्नाविर इत्यादि गुणों के निषेध होने से वह निर्गुण कहाता है। तथा 'एको देवा0' एक देव इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुणा, और निर्गुणश्व इसके कहने से निर्गुण समझा जाता है। तथा ईश्वर के सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, सनातन, न्यायकारी, दयालु, सब में व्यापक, सब का आधार मंगलमय, सब की उत्पत्ति करनेवाला, और सब का स्वामी इत्यादि सत्यगुणों के ज्ञानपूर्वक उपासना करने को 'सगुणोपासना' कहते है। और परमेश्वर कभी जन्म नहीं लेता, निराकार अर्थात् आकारवाला कभी नहीं होता, अकाय अर्थात् शरीर

कभी नहीं धारता, अव्रण अर्थात् जिसमें छिद्र कभी नहीं होता, जो शब्द स्पर्श रूप रस और गन्धवाला कभी नहीं होता, जिसमें दो तीन आदि संख्या की गणना नहीं बन सकती, जो लम्बा चौड़ा और हल्का, भारी कभी नहीं होता इत्यादि गुणों के निवारणापूर्वक उसका स्मरण करने को 'निर्गुणा उपासना' कहते हैं।

इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो अज्ञानी मनुष्य ईश्वर के देहधारण करने से सगुण और देहत्याग करने से निर्गुण उपासना कहते हैं, सो यह उन की कल्पना सब वेद शास्त्रों के प्रमाणों और विद्वानों के अनुभव के विरूद्ध होने के कारण सज्जन लोगों को कभी न माननी चाहिये। किन्तु सब को पूर्वोत्क रीति से ही उपासना करनी चाहिये।

इति संक्षेपतः ब्रह्मोपासनाविधानम्

प्रभु का दर्शन करें

वेद वाणी जो कि मानव के हित के लिये सृष्टि के आरम्भ में दिया गया परमात्मा का एक कानून है। यह कानून, 'वेद वाणी' परमात्मा का बनाया, जीवन मे पालन करने वाले नियमो का उपदेश देने वाला है। मनुष्य ने किस प्रकार अपनी न्यूनताओं को दूर करना और किस प्रकार अहिंसक कर्मो में प्रवृत्त होना' इसी बात का उपदेष वेद वाणी में दिया है।

प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान इसमें उपलब्ध है। उन पदार्थो का ज्ञान प्राप्त करके हम उसे मानवजीवन को उन्नत बनाने के लिये उपयोग करें।

प्रभु का प्यारा प्रभु की दी हुई सुमति को धारण करने वाला, लोक हित के कार्यो मे वह महान उदार ह्रदय वाला होता है। वह सभी का हित करता है। इसमें कोई भेद भाव नही करता। जैसे सूर्य महान है, वह अपना प्रकाश सबको देता है, इसी प्रकार यह प्रभु का उपासक भी सभी का हित करता है। लोक हित के लिए शरीर को धारण करने वाला व्यक्ति शरीर धारण के उद्देश्य से तदनुकूल अन्नों को खाता है। इस प्रकार शरीर में उत्तम रत्नों को (रस–रुधिर आदि सात धातुओं को एंव ओज को) स्थिर करता हैं।

वस्तुतः शरीर की इस भांति रक्षा करने वाला यह शरीर रक्षक ही प्रभु की उपासना करता है। प्रभु के दिये हुए शरीर का ठीक उपयोग करना प्रभु का आदर करना है। इसी शरीर को स्वाद वस अनावश्यक भोजनो से रोगी बना लेना, प्रभु का निरादार करना है चूंकि हम प्रभु की दी हुई चीज का ठीक उपयोग नहीं कर रहे । प्रभु के उपासक को प्रभु की दी हुई हर वस्तु का उचित उपयोग करके प्रभु का प्यारा बनने के लिए सदा निरंतर प्रयास करते रहना चाहिए।

प्रमाद रहित, त्यागशील व मननशील बनकर ज्ञानसे, भक्ति के विकास से हम प्रभु का दर्शन करें।

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि
(ऋ0 3 |32 |26, अथर्व0 18 |3 |67 |1)

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन्! (पुत्रेभ्यः– यथा पिता) पुत्रों के लिये पिता की भांति (नः कतुम्–आभर) हमारे लिये प्रज्ञान दे दे–सौंप दे (पुरुहूत) हे बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने बुलाने योग्य देब ! (अस्मिन यामनि) इस संसारयात्रा में (नः शिक्षा) हमें शिक्षा दे (जीवाःज्योतिःअशीमहि) हम जीव तेरी ज्योति को प्राप्त कर सकें।

परमात्नन् ! तू हमारा पिता है हम तेरे पुत्र हैं, पुत्रों के अन्दर जैसे पिता ज्ञान भरा करता है जीवनयात्रा के मार्ग निर्देश किया करता हैं ऐसे तू भी हमारे अन्दर ज्ञान भर दे जीवनयात्रा के मार्गनिर्देश कर दे ! तथा इस संसारयात्रा में शिक्षा दे कि हम कैसे आपके दिए ज्ञान या मार्गनिर्देश का सदुपयोग कर सकें क्यों–कि इस यात्रा में संकट विपद् पन्थ और पगडएिडयां हैं जो हमें जहां तहां भटकाया करते हैं। कही कएटकाकीर्णता है तो कहीं कड़करप्रचुरता है, कहीं पर्वत की चट्टान है तो कहीं गहरा गर्त–स्थान है कही स्रोत है तो कहीं सागर हैं, कही जंगल है तो कहीं दलदल है। क्या कहूं ऐसी विषमतापूर्ण यात्रा कैसे करुं? बस उस में सफलता मिलेगी तो तेरी ज्योति से अतः हे कृपालो ! हमें अपनी ज्योति दिखाओ हम उसे प्राप्त करें और उसे देखते देखते उस के सहारे अन्त में तुम तक पहुंच जावें।।

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि आयुर्दा अग्नेऽस्यायु में देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो में देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण।।

(यजु0 3/16)

(अग्ने तनूपाः– असि में तन्वं पाहि) है शान प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! तू शरीर रक्षक है मेरे शरीर की रक्षा कर (अग्ने–आयुर्दाः– असि आयुःर्मे देहि) हे परमात्मन् ! तू जीवन दाता है मेरे लिए जीवन दे (अग्ने वर्चोदाः– असि मे वर्चः– देहि) हे जगदीश ! तू आन्तरिक तेजदे (अग्ने यत् मे तन्वाः ऊनं तत्–मे–आपृए) परमात्मन् । जो मेरे शरीर में न्यून है उसे पूरा कर।

प्यारे परमात्मन ! तूने मेरे निवास के लिये देहरुप घर बना कर मुझे प्रदान किया, यह तो तेरी कृपा है परंतुदेव

यह कैसे सुरक्षित रह सके और कब तक रह सके इसका पूर्णज्ञान तो तुझे ही है और इस पर पूर्ण अधिकार भी तेरा ही है, मैं तो इस में रहने वाला हूं क्या कहूं रहता भी हूं तो साधिकार तो नहीं रहता किन्तु एक प्रकार से इसके अन्दर बन्द सा और बन्धा हुआ सा रहता हुं। तब ऐसे घर का रक्षक तो तू ही है इसकी रक्षा कर। अच्छा ! मैं इसमें रहा यह भी रोगरहित स्वस्थ रहा पर यहां रहना भी दीर्घ जीवन का हो पर्याप्त जीवन हो पूर्ण जीवन हो और शुभ जीवन हो यशस्वी जीवन हो साथ ही वर्चस्वी जीवन हो आन्तरिक या आध्यात्मिक तेज से युक्त जीवन हो। तभी जीवन का लाभ है

विना आध्यात्मिक तेज के दीर्घजीवन या पुण्य कर्मो वाला जीवन प्राप्त करके भी मर जाना तो कोई विशेष उत्कृष्ट जीवन नही है। अतः ऐसी न्यूनता को भी ऐसी कमी को भी पूरा कर दे जिस के बिना मैं उत्कर्ष को प्राप्त न कर सकूं।।

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।

शंयोरभिस्रवन्तु न। ।।

(यजु0 36 |12)

(देवीः) जगत् में अपने गुणों से प्रकाशमान जगदीश (नः) हमारी (अभिष्टये) अभिकामना–ऐन्द्रियिक सुखपूर्ति के लिये (शम्) कल्याणकारी हों (आपः) हमारे अन्तरात्मा में आप्त होनेवाले व्यापक परमात्मा (पीतये भवन्तु) हमारी तृप्ति के लिये–आत्म–शान्ति के लिये कल्याणकारी हों (शंयोः–नःअभिस्रवन्तु) इस प्रकार वाह्य जगत् में प्रकाशमान परमात्मा इन्द्रियोंद्वारा {दृष्ट–दिव्यगुण वाला} और आत्मा में प्राप्त व्यापक परमात्मा आत्मा के द्वारा {अनुभूत हुआ} हम पर दोनों ओर से शम्–शान्ति–कल्याण का सञ्चार करें, इन्द्रियों और आत्मा के मध्य मन में दोनों ओर से शान्तिप्रवाह को प्रवाहित करें।

मानव स्वभावतः सुख और शांति का इच्छुक है इसी के लिये जीवन भर प्रयास करता रहता है परन्तु प्रायः लक्ष्य भ्रष्ट होने मे यह सफल नहीं होता। सुख तो संसार में इन्द्रियों द्वारा

प्राप्त होता है और शान्ति अन्दर—आत्मा में ही प्राप्त होती है। परन्तु यह दोनों को बाहिर से ही लेना चाहता है। वस्तुतः जो वाहिरी सुख है वह सच्चा सुख नहीं है वह भी दुःखमिश्रित है फिर शान्ति की तो क्या कथा ? हां यदि वाहिर भीतर दोनो क्षेत्रों में एक लक्ष्य को पकड़ ले तो बाहिर सुख और अन्दर शान्ति का लाभ अवश्य हो सकता है। वह लक्ष्य है 'परमात्मा', वाहिरी जगत् उसका ही तो बनाया हुआ है इस जगद्रूप चित्र में उस चित्रकार परमात्मा की अनुभूति भी तो करनी चाहिए, ऐन्द्रियिक विषयों में परमात्मा की ओर प्रवृत्ति उसकी अनुभूति का संस्पर्श भी रहे तो ऐन्द्रियिक सुख दुःख से रहित सचमुच सुखरुप में अनुभूत हों। गन्धसुख के साथ परमात्मा की विभूति भी लक्षित हो, रससुख में उसकी महिमा भासित हो, रुपसुख में उस ज्योतिःस्वरुप की झलक भासे, स्पर्श सुख में उसके कौशल का भान हो, ध्वनि सुख में उसकी वीणाकला का अनुभव हो। पुर्नः अन्दर आत्मा में उसका साक्षात् समागम प्रतीत हो क्योंकि मैं विना मेरे के नही रह सकता अतः मेरे आत्मा में व्यापक परमात्मा के अनुपम अनिवार्य सङ्ग से शान्ति प्राप्त होती है। ऐन्द्रियिक सुख तो परमात्मा को लक्ष्य में रखते हुए संयम सदाचार द्वारा सेवन करने से अविकल या निर्दोष ऐन्द्रियिक सुख का प्रवाह मन में अन्दर प्रवाहित होगा और आत्मा में साक्षात् परमात्म—समागम का शान्तिप्रवाह मन में बाहिर से लक्षित होगा इस प्रकार दोनों ओर मन सुख और शान्ति के प्राप्त प्रवाहों से आपूर भरपूर होकर स्थिर प्रसन्न तथा शान्त हो जावेगा। इस प्रकार इन्द्रियों द्वारा जगत् में दृष्ट हुआ इष्ट देव और आत्मा में आप्त व्याप्त हुआ परमात्मा दोनों

ओर से सुख तथा शान्ति को देता हुआ मन में आभरित हो कर सुख शान्ति की अमृत वृष्टि करे।।

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्र कामं जारितारो बसूयवो रथे न पादमादधुः।।

(ऋ॰ 7 |32 |2, साम॰ उ॰ 8 |2 |6 |2)

(ते–इमे ब्रह्मकृतः) हे ऐश्वर्यवान् परमात्मा ! तेरे ये मन्त्रकर्ता मनन करने वाले स्तुतिकर्ता जन (हि) निश्चय (सुते) तेरे सुसम्पन्न होने–साक्षात होने के निभित्त (सचा) साथ (मधौ न मक्षः) मधु के निमित्त मखियों की भांति–जैसे मधुसम्पादन करने के निमित्त मखियां फूलों पर जा बेठती हैं ऐसे ही ये (आसते) बैठते हैं–तेरे आश्रित हो जाते हैं तथा (वसूयवः जरितारः) ऐश्वर्य के इच्छुक स्तुतिकर्ता जन (इन्द्रे कामं रथेन पादम्–आदधुः) तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा के ऊपर अपने इच्छाभावको–अभिप्राय को रथ में पैर रखने के समान रख दिया है–सोंप दिया है। बस काम–भाव या आभिप्राय है तो तेरा ही है अन्य वस्तु की कामना नहीं तेरी कामना है अतः तेरे अर्पित हैं।

मधुमखियां जैसे मधु के निमित्त फूलों पर बैठती हैं ऐसे ही मानव अपने प्यारे अध्यात्म मधु परमात्मदेब के निमित्त जगत्में नाना रचना रुपी फूलों पर स्थिर हो उस देव मधु के आश्रय में आनन्द प्राप्त करते हैं। उसी में अपनी सब कामनाएं

मानते हुए स्तुतिकर्ता जन उसकी ओर ऐसे पग रखें जैसे रथ पर हढ़ता से रखा करते हैं। वाह क्या कहना ? अमर देव का अमर मधु (अमृतमधु) और अमर रथ पर अमर स्थान। जो मानव इस मधुवाहन पर बैठ जाता है वह संसार में यात्रा करता हुआ अन्यों के लिये भी मधु को बांटता बरसाता जाता है, प्राणी मात्र को अपने मधु का प्रसाद देता जाता है। क्योंकि उसके मन से उसकी वाणी से उसके हाथ से अपितु अंग अंग से मधु चूता जाता है, धन्य हो ऐसा जन।।

यशो मा द्यावापृथिवी यशो म इन्द्राबृहस्पती।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम्।
यशस्व्यस्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम्।।

(साम॰ पू॰ 6 ।3 ।13 ।10)

(द्यावापृथिवी मा यशः) पिता और माता मेरे प्रति यशोरुप हों—मेरे यश के कारण बनें (इन्द्राब्रहस्पती मा यशः) शिष्य और गुरु मेरे प्रति यशोरुप हों—मेरे यश के कारण बनें (भगस्य यशः—विन्दतु) ऐश्वर्य का धनसम्पत्ति का यश मुझे प्राप्त हो (यशः—मा प्रतिमुच्यताम्) यश मुझे संसार में छोड़े (अहम्—अस्याः संसदः—यशस्वी प्रवदिता स्याम्) मैं इस सभा का यशस्वी प्रवक्ता—प्रवचन क़र्ता—अच्छा बोलने वाला होंऊ।

मानव को जीवन में यषोभागी बनना चाहिए परन्तु अन्यथा

कार्य करते हुए मिथ्या यश की इच्छा न करे किन्तु कार्य ऐसे करे जिससे स्वतः ही यश की प्राप्ति होने लगे ऐसा यश सच्चा यश और चिरस्थायी हुआ करता है, ऐसे यश से यशस्वी होने की भावना को जीवन में ढालना अपने को ऊंचे स्तर पर पहुंचाना है। यशो–भावना के प्रमुख स्थान हैं माता पिता का सम्बन्ध, गुरु और शिष्यों का सम्पर्क, धनसम्पत्ति का संयोग, लोकहित या लोकसेवा में प्रवृत्ति, सभा–समाजों की सङ्गति। अतः माता पिता की आज्ञा पालना सेवा और हितचिन्तन करना, उत्तम शिष्यों को तैयार करना, आदर्श आचार्यो की शरण में रह योग्य बनना उनका सम्मान तन मन धन से करना उनके आदेश पालन में जीवन को लगा देना, धनसम्पत्ति का सदुपयोग एवं सत्पात्र में प्रयोग करना, लोग–हित लोकसेवा में यथाशक्ति यथासम्भव सर्व प्रकार से तत्पर रहना, कथाप्रवचन से सभा–समाजों में भाग लेना यथायोग्य सन्मार्ग प्रदर्शन करना मानव को स्वतः यशोभागी बनाने के स्थान हैं। इस प्रकार मानव सम्बन्धियों के सम्पर्क में, विद्याओं के दानादान उपयोग में, गुरुशिष्यों के सम्पर्क में, धनसम्पत्ति के संयोग के सहयोग में, सच्चे यश पाने की सद्भावना बनाए रखना मानव जीवन का परम कर्तव्य और लक्ष्य है। यशस्वी जीवन ही संसार में सार्थक है सच्ची उन्नति की और ले जाने वाला है।।

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्रयत्समुद्रमीरयाव मध्यम्।

अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम्।।3।।

(ऋ मं 7ऋ88मंत्र३)

(यत्) उपासना द्वारा प्रसन्न हुए वरुण परमात्मा ने अपने दर्शन देने को मुझे अपनी ओर ले लिया—आलिंगन कर लिया तब हम दोनो ऐसे साथी बन गए कि मानो समुद्र के वक्षःस्थल के ऊपर एक ही नौका पर हम दोनों विराजमान हैं तब जब (वरुणः—च · नाबम्—आरुहाब) मैं और मेरा वरने योग्य वरने वाला प्यारा परमात्मा हम दोनों नौका पर चढ़े हैं 'वह तो पूर्व से ही चढा हुआ था मुझे भी जब उसने चढा लिया फिर (यत् समुद्र मध्यं प्रेरयाव) जबकि समस्त समुद्र के अन्दर उसे चलाते हैं और (यत्) जब (अपां स्नुभिः—अधिचराव) जलों के प्रश्रवणों—तरङ्गों के साथ अधिचरण करते हैं—उन पर अवगाहनरुप खेल करते हैं। तो ऐसा लगता है मानो (शुभे प्रेग्ड़े कं प्रेग्ड़यावहै) सुन्दर झूले में सुख का झूलना झूल रहे हैं। श्रवण मनंन निदिध्यासन के अनन्तर परमात्मा का साक्षात्कार होता है। यह क्रम परमात्मा के दर्शन या मेल का है। निदिध्यासन हढ भूमिरुप अभ्यास से संपादित एवं ओ३म् के सार्थक जप को भावित करने रुप उपासना से सम्पादित एवं ओ३म् के सार्थक जप को भावित करने रुप उपासना से प्रसन्न हुआ परमात्मा अपने साक्षात दर्शनार्थ उपासक को अपनाता है—अपनी ओर लेता है—आलिङ्गन करता है और पूर्ण रुप से सखा बनाता है। संसार में जैसे मित्र मित्र के साथ

विहार करता है उसी प्रकार का अनन्य मित्रभाव परमात्मा के साथ भी उपासक का हो जाता है। संसार में जैसे मित्र मित्र कि साथ एक नौका पर सवार हो जल का अवगाहन जल की मौजों के साथ मौज करते हैं। यहां भी वेद ने अलंकार से ऐसा ही चित्र खींचा है ऐसा ही दृश्य दिखलाया है। समुद्र यहां संसार है इसके वक्षःस्थल पर ऊपर–ऊपर तैरने वाली नौका यहां मोक्षपदवी है। इस नौका में परमात्मा तो प्रथम से ही विराजमान था उसके नित्य मुक्त होने से परन्तु आत्मा भी उसका उपासक बन कर उस मोक्षपदवीरुप नौका पर सवार हो ही गया और परमात्मा ने भी इसे अपनी नौका में साथ बिठा ही लिया। अब क्या था ? परमात्मा तो प्रथम से ही पूर्णानन्द था उसे तो आनन्द की आवश्यकता न थी पर जीवात्मा तो आनन्द लेने का उत्सुक और अभ्यासी था तब इसको तो आनन्द देना ही था और उसे भी तो आन्नद लेना ही था। तब जीवात्मा ने मोक्षपदवी रुप नौका में बैठ उस परमात्मा के सहयोग से संसार सागर के ऊपर ऊपर अव्याहत गति से विहार करना आरम्भ कर दिया, अव उस सागर में डूबने का भय नहीं, डूबना तो दूर रहा उसकी तरंगों के थपेड़े भी नहीं लग सकते अपितु यह नौका तो निराली ही है, जल पर तैरती हुई जल के सम्पर्क से सर्वथा परे है। या यों कहिये यह नौका काठ की नौका नहीं किन्तु दिव्य नौका है जिसकी गति स्थल जल गगन में सर्वत्र है और समान है विना रुकावट के है। सब जगह चलती हुई भी सम्पर्क किसी से भी नहीं रखती, वाह रे ऐसी अद्भुत नौका।

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः
न रिष्येत् त्वावतः सखा।।

(ऋ0 1 |61 |8)

(सोम राजन्) हे शांतिस्रोत के उत्पादक सर्वत्रविराजमान परमात्मा ! (त्वम् – अघायतः – नः – विष्वतः – रक्ष) तू पाप के इच्छुक पापी मन वाले जन से हमारी सव ओर से रक्षा कर। क्योंकि (त्वावतः सखा न रिष्येत्) तुझसद्रिश का या तुझ जैसे रक्षा करते हुए का सखा पीड़ित नही होता।

शान्तिश्रोत के रिसाने वाले परमात्मा की शरण आस्तिक जन को पापी जन के सम्पर्क से बचाती है, पापी जन उसकी हानि पर प्रवृत्त नहीं होता। जिस ने परमात्मा से नाता जोड़ लिया उसे अपना सखा बनालिया भला फिर उसे क्या चिन्ता क्योंकि परमात्मा का मित्र किसी से हिंसित नहीं होता। संसारी सखा ता केवल कभी–कभी और किसी किसी स्थान पर ही रक्षा कर सकता है परन्तु सर्वत्र और सर्वदा तो परमात्मा सखा ही रक्षा किया करता है और नितान्त रक्षा करता है उसकी रक्षा में अन्यों द्वारा पीड़ा का स्पर्श भी दूर रहता है। क्योंकि "जा को राखे सांईया मार सके न कोय" यह कहावत प्रसिद्ध है। अत एव परमात्मा अपने उपासकों की अवश्य रक्षा करता है।

उपहूतो वाचस्परिुपास्मान् वाचस्मतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विरधिषि।।

(अथर्व0 1।1।4)

(वाचस्मतिः—उपहूतः) ज्ञान का स्वामी सर्वज्ञ परमात्मा हमारे द्वारा स्वीकृत हुआ—अपनाया हुआ (वाचस्पतिःअस्मान् — उपहव्यताम्) वह ज्ञान का स्वामी सर्वज्ञ परमात्मा हमें स्वीकृत करता है—अपनाता है (श्रु तेन संगमेमहि) उस परमात्मा में हम श्रुत के द्वारा श्रवण के द्वारा सङ्गति करें—संयोग प्राप्त करें (श्रुतेन मा विराधिषि) मैं श्रवण से अलग न होऊ—उसका श्रवण निरन्तर किया करुं।

सर्वज्ञ अन्तर्यामी परमात्मा को जिस क्षण हम अपनाना आरम्भ करें तो वह भी हमें उसी क्षण से अपनाना आरम्भ कर देता है, वह ऐसा सच्चा अपनाने वाला है। अन्य जन कितना भी ऊंचा महात्मा हो वह हमें तुरन्त नही अपनाता, हमारा बहुतेरा समय निरीक्षण परीक्षण में खो देता है हमारे कथन और विचारों की सत्यता जानने और हमें पहिचानने को, परन्तु परमात्मा के यहां क्षण भर भी विलम्ब का अवसर नहीं उसके सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी और पूर्ण—उदार होने से। ऐसे सच्चे अपनाने वाले को हम क्यों न अपनावें ? यह तो मानव का बडा सौभाग्य है जो सच्चे अपनाने वाले से नाता जोडता है। कैसे उससे नाता जोडे कैसे उसके साथ मेल करे सो कहा गया है श्रवण से। सो श्रवण होता है चार प्रकार का जो कि श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार नाम से प्रसिद्ध है। श्रवण

का अर्थ है परमात्मा के सम्बन्ध में या उसके गुणकर्मोका अध्यात्म बचनो द्वारा सुनना। मनन का अभिप्राय है सुने हुए को विचार द्वारा स्थिर करना या निश्चित स्थिति में लाना। निदिध्यासन कहते हैं सुने और निश्चित किए हुए विषय अर्थात् परमात्मा या परमात्मस्वरुप की प्राप्ति करने के लिये पूर्ण और यथार्थ प्रयत्न करनां साक्षात्कार है प्राप्ति। इन श्रवणादि चारों में परमात्मा–सत्संग होता है एक दूसरे के क्रम से अधिकाधिक हुआ करता है। जैसे बाह्यजीवन अर्थात् शरीर में सात्विक स्नेह प्रवेष के लिए दूध, मलाई, मक्खन और घृत क्रमशः उत्तरोत्तर अधिकाधिक स्नेह–वाले होते हैं। दूध में चिकनाई है पर दूध से अधिक मलाई में, मलाई से अधिक माखन में, मखन से अधिक घृत में चिकनाई है, घृत तो बस चिकनाई ही चिकनाई है। इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में आध्यात्मिक स्नेह प्राप्ति के लिये श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार हैं जिनमें क्रमशः परमात्मा सत्संग का आध्यात्मिक स्नेह उत्तरोत्तर अधिकाधिक हुआ करता है। तथा जेसे सुन्दर फलवाले वृक्ष या पौधे का अपने यहां बोने पर अंकुर आना अंकुरित रुप पुनः पत्ते आना पत्रितरुप फिर फूल आना पुष्पित रुप पश्चात् फल आना फलित रुप में चार स्थितियां होती हैं। इनमें बोने वाले की प्रसन्नता या शान्ति क्रमशः अधिकाधिक उत्तरोत्तर उनके दर्शन से बड़ती जाती है एवं ये श्रवण आदि मानव के आध्यात्मिक शान्ति पौधे के अंकुरादिरुप हैं क्रमशः अधिकाधिक उत्तरोत्तर आध्यात्मिक प्रसन्नता या शान्ति प्राप्त करने को। अतः हम इस श्रवणचतुष्टय का अवलम्बन करें कभी इससे अलग न हों कभी इसका त्याग न करें।।

भजन 1

आनन्द धारा मेरे प्रभुजी, मेरे अन्दर बहती जाये
पान करु मैं जितना उसका, उतना ही ये मस्त बनाये"
क्रीडा करे ये मुझसे निरतंर, जीवन रस को ये छलकाये'
वीन, वीणा, बासुरी, शंख ढोल मृदंग बजाये।। आनन्द।।
लहरियों में सप्त सुरो से दिव्यता के गान गुंजाये'
तृप्ति करे मेरे अंतर को, प्रीति के अंकुर उपजाये।। पान।।
शांति सुधा से सींच सींच कर, मेरे हृदय के कमल खिलाये'
चन्द्रिका सम शीतलता दे, आनन्दरस का पान कराये।।
भव सिंधु से जीवन नैया, धाम प्रभु के ले जाये"
आनन्द धारा मेरे। प्रभुजी मेरे अन्दर बहती जाये,
पान करं मै जितना उसका उतना ही ये मस्त बनाये।।

भजन 2

तू है सच्चापिता सारे संसार का ओइम प्यारा,
तू ही तू ही है रक्षक हमारा
चांद सूरज सितारे बनाये पृथ्वी आकाश पर्वत सजाये
अंत पाया नही, तेरा पाया नही पारवारा

तू ही तू ही है रक्षक हमारा। 'तू है' सच्चापितासारेसंसार का ओइम प्यारा''

पक्षीगण राग सुन्दर हैं गाते, जीव जन्तु भी सिर है झुकाते'

उसको ही सुख मिला, तेरी राह पर चला जो प्यारा''

तू ही तू ही है रक्षक हमारा।। 'तू है' सच्चा पितासारे संसार का ओइम प्यारा।

पाप पाखण्ड हम से छुडाओ, वेद मारग पे हमको चलाओ'

लगे भक्ति में मन, करें सन्ध्या हवन जग सारा'

तू ही तू ही है रक्षक हमारा। 'तू है'।।

अपनी भक्ति में मेरा मन लगाना, कष्ट नंदलाल के सब मिटाना'

दुःखिया कंगालो का, और धन वालो का तू सहारा'

तू ही तू ही है रक्षक हमारा ।।'तू है'।।

मेरे प्रिय गीत

गीत न0–1

पूज्य रवीन्द्र नाथ टेगोर की गीतान्जलि से संगृहीत

(तूमि आमार आपन) आत्मीय

मुझे यह कहते हुए आने दे कि,

तू मेरा जीवन है
तू मेरा आत्मीय है,
तूझ से ही मेरे जीवन का
सम्पूर्ण आनन्द भरा है,
तू ही मेरा सपना है। यह कहते हुए मुझे आने दो।
मुझे अमृत भरा स्वर दे
मेरी वाणी को अत्यन्त मधुर कर दे,
मेरा तू ही प्रियतम है,
यह कहते हुए मुझे आने दो।
यह सम्पूर्ण पृथ्वी
यह सम्पूर्ण आकाष
तुझे से भरा है
तुझमे व्याप्त है,
यह बात मेरे अंतः करण से निकले
ऐसा वर दे तूही मेरा आत्मीय है
यह कहते हुए मुझे आने दो।।
मुझे दुःखी जानकर
तू मेरे पास आता है
मुझे छोटा मान
मुझ से प्यार करता है
छोटे से मुख से यह बात

कहते हुए मुझे आने दो
तू मेरा जीवन है
तू मेरा आत्मीय है अपना ही है।।

गीत न0–2

प्रिय व्यथा (प्रभु तोमार लागि आंखि जागे)

प्रभु तेरी प्रतीक्षा में जागते
आंख थक गई
तुझ से भेंट नही हुई
तब भी मैं तेरी राह देख रहा हूं।
यह राह देखना भी मुझे अच्छा लगता है,
द्वार के बाहर बैठा, मेरा भिखारी मन
तेरी करुणा की याचना कर रहा है।
प्रभु तेरी प्रतीक्षा मे जागते आंख थकगई
तेरी करुणा नही मिली
मेरी कामना तृप्त नहीं हुई,
यह अतृप्त कामना भी
मुझे प्रिय लगती है ।।प्रभु0।।
इस जग के राज पथ पर

कितने ही सुख दुःख में लीन पथिक,
मेरे सामने से गुजरजाते हैं,
कोई मेरा साथी नहीं बनता,
फिर भी मुझ में आकांक्षा बनी है।।
यह आकांक्षा ही मुझे प्रिय लगती है।।प्रभु।।
चारों ओर अमृत जल से व्याप्त,
व्याकुल श्यामला पृथ्वी
वही प्रेम क्रन्दन कर रही है।
तुझ से भेंट न हुई
केवल व्यथा ही मेरे भाग में आई है
यह व्यथा ही मुझे प्रिय लगती है।
प्रभु तेरी प्रतीक्षा में जागते
आंख थक गई
तुझ से भेंट नही हुई
तव भी मै तेरी राह देख रहा हुं
यह राह देखना भी मुझे प्रिय लगता है।

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्ताम् पावमानी
द्विजानाम, आयुः प्राणं प्रजा
पशुं कीर्ति द्रविणं
ब्रह्मवर्चसं मह्मं दत्वा
व्रजत ब्रह्मलोक

महर्षि दयानन्द स्मरण गीत

धन्य है तुझको ऐ ऋषि तूने हमें जगा दिया,
सो सो कर लुट रहे थे हम तूने हमें जगा दिया।
धन्य है तुझको ऐ ऋषि तूने हमें जगा दिया,
सो सो कर लुट रहे थे हम तूने हमें जगा दिया।।
अन्धों को आंखे मिल गई
मुर्दों में जान आ गई।
जादू सा क्या चला दिया
अमृत सा क्या पिला दिया।।
धन्य है तुझको ऐ........
श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने
सीने में खाई गोलियाँ।
हंस हंस के हंसराज ने
तन मन व धन लुटा दिया।।

धन्य है तुझको ऐ........

तुझ में कुछ ऐसी बात थी
कि तेरी बात पर ऐ ऋषि।
लाखों शहीद हो गये
लाखों ने सिर कटा दिया।।

धन्य है तुझको ऐ........

अपने लहू से लेखराम
तेरी कहानी लिख गये।
तूने ही लाला लाजपत
शेरे बब्बर बना दिया।।

धन्य है तुझको ऐ........

तेरे दिवाने जिस धड़ी
दक्षिण दिशा को चल दिये।
हैरत में लोग रह गये
दुनिया का दिल हिला दिया।।
धन्य है तुझको ऐ ऋषि
तूने हमें जगा दिया।
सो सो के लुट रहें थे हम
तूने हमें बचा दिया।।